अशांत साबरमती......

JANSATTA Paper 17.6.85 (2)

बिना सांस्कृतिक क्रांति के कुछ होगा नहीं

ए.के. राय

आरक्षण विरोध में एक सवाल हमेशा रखा जाता है वह है मेरिट या मेधातंत्र का। आरक्षण से मेधावी को मौका नहीं मिलेगा और दक्षता घट जाएगी। लेकिन आज सवर्णों के हाथ में राज है लेकिन कोई दक्षता दिखलाई नहीं पड़ती। आर्थिक एकाधिकार की तरह मेधा का एकाधिकार भी समाज के लिए कोई अच्छी बात नहीं। ब्रिटिश भारत में १८८२ से १९०४ के बीच जो १६ आईसीएस हुए थे उनमें १५ ब्राह्मण थे, १९१४ में १२८ मुंसिफों में ९३, १९४४ में ६५० ग्रेजुएटों में ४५२ ब्राह्मण थे। आजाद भारत में १९६९ से १९७८ के बीच सिर्फ १० हरिजन, आदिवासी उम्मीदवार योग्यता के आधार पर आईएएस में और ६ आईपीएस में उत्तीर्ण हो पाए थे। १९७६-७७ में एक भी नहीं। यह कौन सा जादू देश में काम कर रहा है कि तमाम मेधा १८ प्रतिशत ऊंची जाति में सीमित रह जाती है? इसके अलावा अगर आरक्षण प्रशासनिक अदक्षता का कारण होता तो दक्षिण भारत के राज्यों से उत्तर भारत के राज्यों का प्रशासन बेहतर होता क्योंकि दक्षिण भारत में आरक्षण ज्यादा है। लेकिन ऐसा नहीं है। भारत की तरह विकासशील देशों में राज चलाने के लिए किताबी ज्ञान से ज्यादा व्यावहारिक ज्ञान, श्रम की आदत तथा सेवा की मानसिकता की जरूरत है जो निचले तबके के लोगों के अंदर ही आज मिलती है।

आरोप है कि आरक्षण में आम हरिजन, आदिवासी, पिछड़ी जाति के लोगों को लाभ नहीं हुआ। कुछ गिने चुने लोग तमाम सुविधा उठा लेते हैं। इसमें सच्चाई है। यही कारण है कि जैसे सवर्णों के नेता जन्म के आधार पर आरक्षण का विरोध करते हैं पिछड़ी जाति के नेता आर्थिक आधार के नाम से चौंकते हैं। सातवीं योजना से संबंधित जो प्रपत्र सातवीं लोकसभा के अंतिम सत्र में पेश किया गया था उसमें एक लाइन में आर्थिक आधार पर आरक्षण का उल्लेख था जिसके विरोध में सभी पार्टियों के पिछड़ी जातियों के सदस्यों ने हल्ला किया और सरकार को उसे वापस लेना पड़ा। तमिलनाडु में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण में जो आय की सीमा रखी गई थी। एमजीआर को अंत में उसे हटा देना पड़ा। पिछड़ी जाति के अंदर आर्थिक दृष्टि से संपन्न लोग ही आरक्षण के नेता हैं।-एवं सवर्णों के एकाधिकार के विरोध में होते हुए भी अपने एकाधिकार को छोड़ना नहीं चाहते हैं। लेकिन इसका कारण आरक्षण नहीं बल्कि देश की पूंजीवादी व्यवस्था है जो इस मानसिकता की जनक है। पिछड़ी जाति के अंदर इस नए ब्राह्मणवाद को खत्म करने के लिए यह व्यवस्था करनी होगी कि जिस परिवार ने एक बार आरक्षण की सुविधा ली उसे फॉरवर्ड घोषित करना होगा ताकि परिवार दोबारा आरक्षण की सुविधा न ले पाए और उसे दूसरे लोगों को उपलब्ध कराया जा सके। यह एक नया आंदोलन होगा जो जाति संघर्ष को एकाधिकार विरोधी संघर्ष में बदल देगा।

भारत में जाति व्यवस्था ने जन्म के आधार पर लोगों को बांटे रखा है, प्रश्न है कि उसे कर्म के आधार पर कैसे एक किया जाए। आरक्षण एक माध्यम है, लक्ष्य है जाति व्यवस्था का अवसान। इतिहास की खामियों का सुधरना आसान नहीं। विशेषकर जो खामियां सदियों से चली आ रही हैं। भारत में शिक्षा एवं नौकरी में जो बहुत सी आरक्षित सीटें खाली पड़ी रहती हैं इसका एक कारण जैसे ऊंची जाति की करामात है तो दूसरा कारण निचले तबके के अंदर आकांक्षा तथा प्रयास का अभाव है। जाति व्यवस्था ने सिर्फ सर्वेक्षण को प्रधानता स्वीकारना ही नहीं सिखाया बल्कि दलितों के अंदर अपनी हीन अवस्था को खुद मान लेने की भी आदत डाली। यह हीनता कैसे दूर होगी? उपनिषद का अध्यात्मवाद, गीता के उपदेश, धर्मसूत्र के निर्देश, रामायण में शंबूक की कथा, महाभारत में एकलव्य की कहानी ने युगों से जादू कर शूद्रों को समाज के चरणों में बैठा रखा है। एक बहुत बड़ा आंदोलन चाहिए इस मोहजाल को तोड़ने के लिए। रवींद्रनाथ ने सभ्यता के रथ के सारथी के रूप में शूद्रों की कल्पना की थी। लेकिन इसके लिए समाज को कुछ दिनों का शीर्षासन कराना है जो सामाजिक क्रांति के द्वारा ही संभव है।

अंध संस्कार के अलावा जिस शक्ति के आधार पर भारत में जाति व्यवस्था कमजोर होने के बजाए ताकतवर हो रही है वह है पूंजीवाद के साथ गठबंधन। विदेश निर्भर पूंजीवाद स्वयंबोध को बढ़ता है लेकिन आत्म बल को नहीं। चूंकि यह पूंजीवाद परजीवी है इसलिए श्रम की मर्यादा को प्रतिष्ठित नहीं करता है। जाति व्यवस्था ने समाज में श्रम विभाजन बनाया हुआ है जहां शारीरिक श्रम अंसम्मानित है तथा परजीविता मर्यादित है। भारत में पनपते पर-निर्भर पूंजीवाद में इस व्यवस्था को एक नया जीवन मिला है। सामाजिक क्रांति बिना औद्योगिक क्रांति के संभव नहीं है। कुछ उद्योगों को उधर-उधर से लाकर जो खड़ा किया है उसने जाति व्यवस्था को तोड़ के वर्ण को ही वर्ग की पोशाक पहनाकर मजबूत किया है। इसलिए किसी भी उद्योग में जहां शारीरिक श्रम तथा कष्ट ज्यादा है वहां हरिजन, आदिवासियों व पिछड़ी जाति के लोग काम करते मिलेंगे जबकि दफ्तर सवर्णों के हाथ में रहेगा। औद्योगिक क्षेत्र भी जातिवाद, सांप्रदायिकवाद का अखाड़ा बन गया है।

हिंदुस्तान की राजनीति भी व्यवस्था विरोधी से ज्यादा श्रमविरोधी है। कारण राजनीति में ऊंची जाति की प्रधानता है। आज भारत में जाति व्यवस्था एवं नई परआश्रयी पूंजीवाद के गठबंधन के कारण एक पूंजीवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद पनप रहा है। इसलिए गुजरात एवं पंजाब, जहां पूंजीवाद उद्योग एवं कृषि में ज्यादा विकसित है वहां जातिवाद एव संप्रदायवाद अधिक उभरा है। अठाहरवीं सदी की अमेरिकी दास व्यवस्था जैसे पुरानी रोमन दास व्यवस्था से ज्यादा अमानवीय थी वैसे ही पूंजीवादी व्यवस्था में जातिवाद, संप्रदायवद, परंपरागत सामंती जाति व्यवस्था से बहुत ज्यादा खतरनाक है। इसलिए आज जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ाई का भी एक अंग है। और भारत में समाजवादी दर्शन के आधार पर ही सामाजिक क्रांति भी हो सकती है।

भारत की जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई एक लंबी राजनैतिक लड़ाई है जिसके विभिन्न औजारों में आरक्षण भी एक औजार है और इस औजार का असर उसके व्यवहार पर है। सही नेतृत्व एकमात्र समाजवादी प्रगतिशील शक्ति ही दे सकता है जिसने आज तक अपने को जाति समस्या से दूर रखा है। रजनी कोठारी की भाषा में जो जाति समस्या से अलग कोई राजनीति खोज रहे हैं वे निराधार राजनीति के पीछे हैं। यही कारण है कि पश्चिम बंगाल केरल आदि एक दो जगह को छोड़कर भारत की प्रगतिशील ताकतें आज प्रभावहीन हैं। भारत में कोई भी राजनैतिक क्रांति सांस्कृतिक क्रांति के जरिए ही शुरू होगी। और जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ना भारत में सांस्कृतिक क्रांति का पहला काम होगा। इस देश में सामाजिक शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध ऐसे बहुत से आंदोलन हुए जिन्होंने आर्थिक व्यवस्था के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठाया। वैसे ही आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध जो लड़ाई हुई उसमें सामाजिक सवाल थोड़े रखे गए। लेकिन इस देश में जरूरत है एक नई दलित क्रांति की जो सामाजिक आर्थिक ढांचे को तोड़ कर एक नए समाज का निर्माण करे।

समाप्त